इकाई 7 विभिन्न युगों में संरक्षण*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 प्रकृति की नैतिकताः ब्रिटिश आधिपत्य से पूर्व का भारत

7.3 प्रकृति का संरक्षणः इसके इतिहास की समझ

7.4 औपनिवेशिक और उत्तर–औपनिवेशिक संदर्भ में संरक्षणः भारत

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.8 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको निम्नलिखित को आलोचनात्मक रूप से समझने में सक्षम बनाएगीः

- संधारणीयता के लिए संरक्षण का महत्व;
- ऐतिहासिक काल में प्रकृति और संरक्षण की समझ में परिवर्तन;

* डॉ. वसुधा पांडे, सहयोगी प्राध्यापक (सेवानिवृत्त), इतिहास विभाग, लेडी श्री राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

- प्रकृति इतिहास की पृष्ठभूमि के रूप के बजाय गतिशील रूप में;
- इतिहास के अभिन्न अंग के रूप में पर्यावरण और आवासों में परिवर्तन;
- संरक्षण की रणनीति में परिवर्तन के साथ संबंधित मानव–प्रकृति की अंतःक्रियाओं में परिवर्तन;
- प्राकृतिक संसाधनों के वैश्विक संरक्षण की आवश्यकता की पृष्ठभूमि और इसके अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव;
- जैव–विविधता का महत्व और संधारणीयता (Sustainability) और स्थानीय ज्ञान परंपराओं के साथ संबंध; और
- प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और संधारणीय विकास पर नीतिगत निर्णयों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य।

7.1 प्रस्तावना

मानव गतिविधियाँ भौतिक पर्यावरण को तब से प्रभावित कर रही हैं जब से मानव ने इस ग्रह पर निवास किया है। प्रागैतिहासिक लोग अपने प्राकृतिक परिवेश के साथ और उसके भीतर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की एक सामान्य निरंतर स्थिति में नहीं रहते थे। जीवाश्म विज्ञान, पुरापारिस्थितिकी विज्ञान, पुरातत्व और नृविज्ञान के साक्ष्य बताते हैं कि पिछले 1,20,000 वर्षों में मानव आबादी का फैलाव पर्यावरणीय क्षरण और विलुप्तिकरण के साथ हुआ है। सबसे प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक विलुप्तियों में मैस्टोडोन (विशालकाय हाथी की प्रजाति), ग्राउंड–स्लॉथ और अन्य विशाल स्तनधारियों का गायब होना है जो 12,500 और 10,000 वर्ष पूर्व के मध्य मानवीय औपनिवेशीकरण की एक प्रमुख लहर के आने के साथ हुआ। मनुष्य वनस्पति को संशोधित करने और शिकार के लिए

उचित जानवरों की आबादी को केन्द्रित करने के लिए प्रायः आग का इस्तेमाल करते थे।

उन्होंने इस प्रकार से मछलियाँ पकड़ीं, शिकार और संग्रहण किया कि उससे प्रजातियों की संख्या, जानवरों का व्यवहार और अंतर–प्रजाति संबंधों की परिवर्तनात्मकता प्रभावित हुई। उन्होंने पौधों और जानवरों की प्रजातियों का पालतूकरण किया और बाँधों और नहरों के द्वारा प्राकृतिक जलीय प्रणालियों में परिवर्तन किया। कभी–कभी यह चरम पर्यावरणों के प्रति अनुकूल की प्रक्रिया का हिस्सा था और इसने प्रायः स्थलाकृतियों (landscapes) को ही परिवर्तित कर दिया। उदाहरण के लिए, वन घास के मैदान, झाड़ियों से भरी भूमि या खेत बन गए। पूरी तरह से प्राकृतिक (नज़र आने) प्रतीत होने वाली स्थलाकृतियों में मानव हस्तक्षेप की पहचान वैज्ञानिकों ने अभी की है। किसी भी आवास (habitat) के इस पहलू का वर्णन करने के लिए ''मानवजनित'' (ऐन्थ्रोपोजेनिक) की संज्ञा की जाती है। ''एन्थ्रोपाजेनिक'' से समझा जाता है कि हजारों वर्षों में सभी पारिस्थितिक तंत्रों को मानवों द्वारा काफ़ी संशोधित एवं परिवर्तित किया गया है। उदाहरण के लिए, स्टीफ़ेन जे. पाएन {(1982), 2007} ने ग्रह के प्रत्येक स्थलीय कोने में मानवों, अग्नि और वनस्पति के सह–विकास को दर्ज किया है। अंटार्कटिका ही इस नियम को सिद्ध करने में एक अपवाद है (पाइन, 1986)।

दुनियाभर की स्थलाकृतियों में लोगों ने भी गैर–मानवी प्राकृतिक दुनिया पर में अपनी निर्भरता को पहचाना। संधारणीयता के लिए उनकी चिंता 'प्रकृति की

नैतिकता' में प्रदर्शित होती है जिसका अर्थ हैं प्रकृति का उपयोग इस तरीके से किया जाना चाहिए कि पुनर्जनन संभव हो। के. शिवरामकृष्णन लिखते हैंः

''प्रकृति की नैतिकता को साधारण रूप से स्थायी चिंताओं और मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में समझा जा सकता है जिन पर मनुष्य गैर–मानवी दुनिया के साथ अपनी अंतः क्रिया में विचार करते हैं, उसे व्यक्त करते हैं और उनका इस्तेमाल करते हैं जब वे दुनिया में अपनी पहचान और उद्देश्य की भावना का निर्माण कर रहे होते हैं।[1]

प्रकृति की यह नैतिकता हर जीवित सांस्कृतिक परंपरा और अधिकांश दक्षिण एशियाई संस्कृतियों में गहराई से अतर्निहित पाई जाती है। इसे प्रायः धार्मिक सिद्धांतों के माध्यम से लागू किया जाता है एवं पवितत्रता प्रदान की जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्वी अफ़्रीका की मासाई जनजाति ने पशुपालन किया जिससे उनका उनकी अर्धशुष्क निवास भूमि या निवास–क्षेत्र में विशाल जानवरों के साथ रह पाना संभव हुआ। आर्कटिक क्षेत्र में मानव कारिबू बारहसिंगों के समूहों और समुद्री स्तनधारियों के साथ सह–अस्तित्व में रहे। अस्तित्व में बने रहने के लिए उन्होंने प्रकृति से मिलने वाली वस्तुओं का मूल्य समझा और संधारणीयता के प्रति चिंतित रहे। संधारणीयता भावी पीढ़ियों के संसाधनों को प्राप्त करने की क्षमता को प्रभावित किए बगैर वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल देती है। इसलिए अधिकांश पारंपरिक संस्कृतियों ने सर्वोत्तम

[1] शिवरामकृष्णन, के. (2015), 'एथिक्स ऑफ़ नेचर इन इंडियन एनवायरनमेंटल स्टडीज़, संस्करण. 49, संख्या. 4, पृष्ठ संख्याः 1261–1310।

उपयोग और संधारणीयता को बनाए रखने के लिए अन्य समुदायों के साथ साझा करने की व्यवस्था की और इस प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण की क्षमता को पहचाना (इसकी मौसमी भिन्नताओं के साथ)। भारत में अन्य प्रथाओं के साथ एक अवधारणा पवित्र उपवन की भी थी। पवित्र उपवन ''प्राचीन प्रकृति अभयारण्य हैं जहाँ सभी प्रकार के जीवित प्राणियों को किसी देवता की कृपा से सरक्षा प्राप्त होती है।''[2] इनमें से कुछ परंपराएं आधुनिक काल में भी अस्तित्व में हैं, यद्यपि कई अब जनसंख्या वृद्धि, कम संसाधनों, परिवर्तित भू–धारण व्यवस्थाओं (पट्टेदारी); जलवायु परिवर्तन और तीव्र आर्थिक तकनीकी परिवर्तनों के साथ संघर्षरत हैं।

अतः, संरक्षण को एक अभ्यास के रूप में संदर्भित किया जा सकता है जो प्रकृति और पर्यावरण के बारे में पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे ज्ञान के उपयोग के मध्यम से आवास एवं समुदाय को संधारणीय बनाता है।

क्या हम ऐसे समाजों के बारे में सोच सकते हैं जो विवेकपूर्ण नहीं थे बल्कि अपव्ययो थे, जिन्होंने संरक्षण नहीं किया और अपनी जीवन शैली को बनाए रखने एवं उसके पुनर्जनन में असक्षम रहे? हड़प्पा सभ्यता के इर्द–गिर्द एक प्रमुख बहस इस पहलू की पड़ताल करती है। इसका कोई आसान जबाव नहीं है। हालांकि जेरेड डायमंड ने अपनी ''पुस्तक कोलैप्सः हाउ सोसायटीज़ चोज़

[2] गाडगिल माधव, इकोलोजिकल जर्नीज़ः द साइंस एंड पॉलिटिक्स ऑफ़ कंज़र्वेशन इन इंडिया, 2001, पृष्ठ संख्याः 160।

टू फ़ेल और सक्सीड (2004)'' में इस पर शोध किया और बहुत विस्तार से इसकी चर्चा की।

7.2 प्रकृति की नैतिकताः ब्रिटिश आधिपत्य से पूर्व का भारत

प्रकृति की सुरक्षा, पुनर्स्थापना या संरक्षण का विचार मानवता जितना ही पुराना है। यह विभिन्न कालों में कई विभिन्न तरीकों से विशिष्ट वातावरणों और पारिस्थितियों में व्यक्त किया गया है। भारत कई विभिन्न पारिस्थितिकियों का समन्वय है और प्रकृति और प्रकृति के संरक्षण की अपनी समझ का निर्माण करने वाली असंख्य प्रथाओं और धार्मिक संवेदनाओं का विवरण देना कठिन है। पवित्र उपवनों की परंपरा भारतीय स्थलाकृति परिदृश्यों में पाई जाती है। प्रथम वन महानिरीक्षक ब्रांडिस ने भारत में बड़ी संख्या में पवित्र उपवन पाए और ब्रिटिश शासन के दौरान उनके विलोपन पर दुख व्यक्त किया। ये अबाधित जैविक समुदाय थे। भूमि का 10–35 प्रतिशत भाग अनछुआ छोड़ दिया जाता था। आश्रय (Refugia) की इस व्यवस्था को मुख्य आधार संसाधन प्रजाति जैसे गूलर (ficus glomerata) के प्रोत्साहन के द्वारा समर्थन प्राप्त होता था जो जैविक विविधता प्रदान करती थी।

''दिस फ़िशर्ड लैंड (1993)'' के भाग 2 में माधव गाडगिल और रामचंद्र गुहा प्राचीन और मध्यकालीन भारत की परिस्थितिकी और पारिस्थितिकीय मुद्दों पर सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रभाव का विवरण प्रस्तुत करते हैं। धर्म और प्राकृतिक संसाधनों के स्वरूप के बीच परस्पर क्रिया की चर्चा दिलचस्प उदाहरणों से की गई है जैसे संसाधनों के उपयोग के पूर्व–आधुनिक स्वरूप में आग (अग्नि) और जल के देवता (वरूण) का महत्व। वे यह भी प्रदर्शित करते हैं कि हजारों वर्षों

से भारतीय समाज ने समावेशी दृष्टिकोण विकसित किया जिसने विभिन्न प्रकार के संसाधनों के उपयोग को संभव बनाया और सुझाव दिया कि जाति व्यवस्था ने एक खंडित लेकिन एकीकृत दृष्टिकोण प्रदान किया। वे भारतीय जाति व्यवस्था को पारिस्थितिक अनुकूलन के एक रूप में देखते हैं जहाँ संसाधन संरक्षण को जाति के कर्त्तव्यों द्वारा संस्थागत रूप दिया जाता है। उनके शब्दों में (1993: 110):

''समावेशीकरण की इस प्रक्रिया के लिए संस्थागत तंत्र निश्चित रूप से जाति व्यवस्था है। और यदि एक विशिष्ट जाति पदानुक्रम के भीतर अधीनस्थ स्थिति स्वीकार करते हुए आखेटक–संग्रहक संसाधनों के उपयोग के अपने पारंपरिक तरीकों को बनाए रखते हुए विलुप्त होने से रोक सकते हैं, यद्यपि यह केवल विजयी कृषक प्रणाली की वृहद अधीनता की कीमत पर होगा। कुछ पारिस्थितिक क्षेत्रों (पहाड़ियों, मलेरिया वाले जंगलों) को कृषक प्रणाली के दायरे से बाहर छोड़ने और इनके भीतर शिकारों और पशुचारकों क लिए कुछ इलाकों को आरक्षित करने की इन दो पूरक रणनीतियों के द्वारा अंतर्प्रणाली सहयोग और सह–अस्तित्व के एक विशिष्ट पथ को ढूंढ़ने में सहायता मिली है।''

7.3 प्रकृति का संरक्षणः इसके इतिहास की समझ

आज संरक्षण एक संस्थागत प्रथा है जिसे संयुक्त राष्ट्र संगठनों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है और दुनिया के सभी देशों द्वारा एक नीति के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसकी जड़ें प्रारंभिक आधुनिक काल में खोजी जा सकती हैं। मानव इतिहास के इस काल में समुद्रो के नौवहन, नई दुनिया की खोज और सहायक संबंधों (इसकी चर्चा इकाई 8 में ''पारिस्थितिक साम्राज्यवाद'' के रूप

में की गई है) ने प्राकृतिक विविधता की वैश्विक चर्चा को संभव बनाया। इस प्रक्रिया ने प्राकृतिक दुनिया के महत्व और मानव सभ्यता द्वारा इसके बदलाव के बारे में जागरूकता पैदा की। पश्चिमी दुनिया में उभरती हुई वैज्ञानिक खोजों और प्रभोधन (Enlightenment) ने संस्कृति की शक्तियों और प्रकृति पर बढ़ते मानवीय नियंत्रण के अभिमूल्यन को सामने रखा। विनीता दामोदरन के अनुसार ''संरक्षण'' शब्द पहली बार 14वीं शताब्दी में थेम्स नदी जैसे नदी घाटियों के नियंत्रण के संदर्भ में ब्रिटेन में अपनाया गया था। 18वीं शताब्दी के दौरान प्रकृति पर प्रभुत्व के बारे में मानव आवासों को बदलने में जलवायु की भूमिका पर चर्चाओं द्वारा आशा प्रकट की गई।[3] 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति आने के साथ और भी पवित्तन आए। नई मशीनों और कारखानों के प्रभाव ने प्राकृतिक संसाधनों के संधारणीय उपयोग करने वाली कृषक जीवन शैली को खत्म करने की चिंता पैदा कर दी। इस संदर्भ में प्रकृति–संस्कृति द्वंद्व पर जोर दिया गया। चार्ल्स डार्विन के शोध ने दर्शाया कि दुनिया बहुत पुरानी थी और समय के साथ इसमें काफ़ी परिवर्तन आए ह। जानवरों और पौधों के साथ प्रकृति ने प्राकृतिक वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन किए जाने वाले सार्वभौमिक नियमों का पालन किया जबकि मानवों ने संस्कृति और सभ्यता का निर्माण किया। इस विरोधाभास ने प्रकृति का मनुष्य के लिए बाहरी होने का विचार अभाव मात्र था। यदि मानवों को एक आवास से हटा दिया जाए तो वह अपनी मूल स्थिति में पुनर्स्थापित हो जाएगा। रूसो और बाद में मशीनीकरण और शहरी भीड़–भाड़

---

[3] ग्लकिन, कलेरेंस, जे., ''ट्रेसेस ऑफ़ द रोडियन शोर'', 1967, पृष्ठ संख्याः 494।

के साथ औद्योगिक जीवन के प्रति रोमांटिक प्रतिक्रिया ने इस दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित किया। रोमानी/रूमानी (romantic) घोषणा पत्र में 'प्रकृति की ओर वापसी' की उद्घोषणा की। अविकृत प्रकृति को पुनर्स्थापन के विशुद्ध और आध्यात्मिक स्रोत के रूप में देखा गया। रोमांटिक विचार आज भी प्रचलित है और उसने संरक्षण के प्रथम चरण को गहराई से प्रभावित किया।

प्रकृति संरक्षण का पहला चरण मोटे तौर पर उस स्वरूप में रहा है जिसे जॉर्जीना मेस ''स्वयं के लिए प्रकृति'' कहती हैं। यह विश्वास करता है कि अगर प्रकृति को छोड़ दिया जाए तो यह जंगल उत्पन्न करती है। यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका, दोनों में, जंगली और जंगल का विकास पुनर्स्थापन का आहवान बनी। जंगल ने एक प्राचीन और पूर्वकालिक स्थल के तौर पर अर्थ धारण किया जिसे लोगों के द्वारा विकृत नहीं किया गया था।[4] संरक्षण की प्रथाओं में इस विचार के अंतरण का पहला उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका में पाया जाता है। इन दशकों में ऊपरी वृहद झीलों के विस्तृत देवदार क पेड़ों का ह्रास हुआ, बाज़ारी शिकारियों द्वारा कई शिकार पक्षियों और स्तनधारी प्रजातियों का अत्यधिक शिकार किया गयाः मिडवेस्ट (संयुक्त राज्य अमरीका का मध्य–पश्चिम क्षेत्र) के व्यापक प्रेयरी (एक प्रकार की घास) मैदान का कृषि में तेजी से रूपांतरण हुआ; अत्यधिक मछलो पकड़ने, प्रदूषण और जलीय परिवर्तन के द्वारा जल–प्रणालियों में गिरावट आई और अर्धशुष्क पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र में

[4] किरशोफ, थॉमस और विसेनज़ोटी, पेरा, 'ए हिस्टोरिकल एंड सिस्टेमैटिक सर्वे ऑफ़ यूरोपियन परसेप्शन्स ऑफ़ वाइल्डनेस, एनवायरनमेंटल वैल्यूज़, संस्करण 23, संख्या 4 (अगस्त 2014), पृष्ठ संख्या 443–46।

व्यापक रूप से अत्यधिक चराई की गई। कई प्रजातियों की कमी और विलुप्ति के कई स्पष्ट मामले जैसे सफेद चीड़, जलपक्षी, जंगली बैल (Bison), कैरोलिना ताता और यात्री कबूतर निरंतर संसाधन निष्कर्षण और गिरावट के युग के प्रतीक बने। 19वीं शताब्दी के अंत में संयुक्त राज्य अमरीका की एक वृहद और विस्तृत होती सीमा थी। अमरीकी मूल निवासियों की संख्या युद्ध और महामारियों से काफ़ी कम हो गई थी, उन्हें उनके क्षेत्रों से हटा भी दिया गया और अब यह कल्पनीय था कि भूमि के विस्तृत क्षेत्रों में जंगलों की अतिशय वृद्धि होगी। जंगली प्रकृति के साथ मजबूत अमेरिकी पहचान की आरंभिक अभिव्यक्ति पारलौकिकवादियों (transcendentalists) राल्फ़ वाल्डो इमर्सन और हेनरी डेविड थोरो के निबंधों, विलियम कलेन ब्रायंट की कविताओं और जेम्स फेनिमोर कूपर के उपन्यासों में हुई। जॉर्ज पर्किन्स मार्श की ''मैन एंड नेचरः ऑर फ़िज़िकल जियोग्राफी ऐज़ मौडिफाइड बाइ हयूमन ऐक्शन (1864)'' को व्यापक रूप से आधुनिक संरक्षण साहित्य का प्रथम मील का पत्थर माना जाता है। 1872 में अमरीकी कांग्रेस ने येलोस्टोन में एक 3,300 वर्ग मील विस्तृत क्षेत्र को ''सार्वजनिक उद्यान'' या ''आनंददायक भूमि'' के रूप में स्थापित किया। 1885 में न्यूयॉर्क शहर में एडिरोंडैक पर्वतों में इसके जंगली चरित्र के साथ इसके महत्वपूर्ण मूल्यों की सुरक्षा के लिए एक राज्य वन संरक्षण क्षेत्र स्थापित किया। उसी वर्ष कनाडा ने बैन्फ को अपना पहला राष्ट्रीय उद्यान नामित किया। प्रकृति लेखकों के उत्साह से संरक्षण की ओर भारी प्रोत्साहन मिला जैसे जॉन म्यूर ने राजनीतिक प्रयासों का नेतृत्व किया जिसके परिणामस्वरूप 1890 में कैलिफ़ोर्निया में एक वृहद योसेमाइट/योज़माइट राष्ट्रीय उद्यान को नामित किया गया और जिन्होंने 1892 में सिएरा क्लब की स्थापना की। 1890

और 1914 के मध्य यूरोप, उत्तरी अमरीका में और यूरोपीय उपनिवेशों की श्वेत आबादी के बीच संघों की स्थापना हुई जिन्होंने प्रकृति के संरक्षण के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध किया। 1910 तक संयुक्त अमरीका में 20 प्रकृति संरक्षण संगठन थे। यूनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन) में 1895 में राष्ट्रीय न्यास की स्थापना हुई और 1903 में साम्राज्य के जंगली जानवरों के संरक्षण के लिए एक समाज (''सोसाइटी फ़ॉर प्रिज़र्वेशन ऑफ़ वाइल्ड फॉना ऑफ़ दि एम्पायर'') की स्थापना हुई। सदी के अंत में यूरोपीय महाद्वीप में तेजी से एक के बाद एक संरक्षण संगठन उभरे। जर्मन बंड फे फोगे शत्ज़ (Bund fir vogeschutz) या पक्षियों के संरक्षण के लिए संघ, उदाहरण के लिए जर्मन–ऑस्ट्रियाई फराइन नचुरशुन्ज़पार्क (Verein Naturschutzpark) या प्रकृति रिज़र्व संघ, फ्रेंच स्थलाकृतियों की सुरक्षा के लिए समाज (Societe Pour la Protection des Pavsages), डच प्राकृतिक स्मारकों के संरक्षण के लिए संघ (vereeniging tot behoud von Natuurmonumenten), स्विस प्रकृति संरक्षण के लिए संघ (Bund furnaturschutz), इटली में प्राकृतिक स्मारकों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय संघ (Lega nazionale per la Protezionedei Monumenti Naturali); सभी की स्थापना 1899 से 1913 के मध्य हुई। अन्य प्रवासी उपनिवेशों कनाडा, न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया में 1870 और 1880 के दशकों में राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना हुई। इनमें से प्रत्येक ब्रिटिश प्रवासी समाज ने अमरीकी आदर्श की व्याख्या अपने अनुसार की। यूरोप ने भी संरक्षण के लिए इस नमूने का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए, स्वीडन के उन क्षेत्रों पर राष्ट्रीय उद्यान बनाए गए जहाँ स्थानोय आदिवासी सामी (लैप) लोग 1909 से रहे थे और 1935 में

फासीवादी इटली ने भूतपूर्व ऑस्ट्रियाई प्रदेश में स्टेलवियो राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना की।

संरक्षण आंदोलन की एक शाखा अविकृत प्रकृति या जंगली क्षेत्रों की सुरक्षा और पौधों एवं जानवरों की प्रजातियों को विलुप्त होने से बचाने से संबंधित थी। येलोस्टोन प्रकृति संरक्षण का वैश्विक आदर्श और अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण आंदोलन का संस्थापक मिथक बन गया।[5] वैश्विक संरक्षणवादियों द्वारा एक नमूने के रूप में येलोस्टोन उद्यान की स्वीकृति महत्वपूर्ण थी और भविष्य के लिए इसके महत्वपूर्ण प्रभाव थे। येलोस्टोन के आंरभिक वर्षों में अमरीकी मूल निवासियों को पौधे एवं जड़ी–बूटियाँ एकत्रित करने की अनुमति दी गई परंतु बाद में उन्हें इससे वंचित कर दिया गया। ''जंगल का संरक्षण पृथ्वी पर सबसे खतरनाक जानवर द्वारा ग्रहीय विनम्रता का एक संकेत है।''[6] येलोस्टोन आदर्श ने, इसलिए, संरक्षित क्षेत्रों से मनुष्यों को हटाने का आह्वान किया।

20वीं शताब्दी के आरंभ के इस दौर में संरचना का एक और रूप, जो अधिक उपयोगितावादी था, पश्चिमी दुनिया में उसकी भी वकालत की जा रही थी और उसे विकसित किया जा रहा था और उपनिवेशों में लागू किया जा रहा था। इसे शाही (imperial) और औपनिवेशिक सरकारों द्वारा प्रोत्साहन दिया गया जो कम होते प्राकृतिक संसाधनों के कारण चिंतित थे। उपयोगितावादी संरक्षक

---

[5] कुप्यर, पैट्रिक (जिसेलविस द्वारा अनुवादित), ''क्रिएटिंग वाल्इडरनेसः ए ट्रांसनैशनल हिस्ट्री ऑफ़ द स्विस नैशनल पार्क'', 2014, पृष्ठ संख्या 315–17।

[6] नैश, रोडेरिक फ्रेज़ियर, 'सेलिब्रटिंग वाल्इडरनेस', द जॉर्ज राइट फोरम, सिंतबर 2004, संस्करण 21, संख्या 3, पृष्ठ संख्या 6–8।

के मूल में सतत् उपज (sustainable yield) की अवधारणा थी। जैसा कि एल्ओ लियोपोल्ड ने अवलोकन किया कि प्रगतिशील संरक्षण के झंडे के अंतर्गत ''वन्यजीवन, वनों, पर्वतमालाओं और जलशक्ति को अक्षय जैविक संसाधनों के रूप में देखा गया जो स्थायी बनाए जा सकते हैं यदि उनका दोहन वैज्ञानिक रूप से किया जाए और उनके पुनरुत्पादन से तज नहीं। ''संरक्षण'' तब तक एक निम्न शब्द था, शब्दकोश में धूमिलता से सुप्तप्राय था। लोगों ने इसके बारे में कभी सुना नहीं था। इसमें जंगलों या जल का कोई संकेत नहीं मिलता था। रातोंरात यह एक राष्ट्रीय मुद्दे का नाम बन गया।''[7] एक वन उत्तराधिकारी धीरे–धीरे इस उपयोगितावादी नैतिकता से दूर हो गया लेकिन पर्यावरण आंदोलन के आने तक यह नीति के रूप में बना रहा। इस आंदोलन की अगुवाई में वन सेवा न केवल अन्य संसाधन प्रबंधन संस्थाओं के लिए एक आदर्श बनी बल्कि पूरे विश्व में एक महत्वपूर्ण सेवा बन गई। 1913 में स्विटज़रलैंड में प्रकृति के संरक्षण पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने 16 देशों के प्रतिनिधियों को आकर्षित किया। प्रथम विश्व युद्ध ने इस प्रयास को गति प्राप्त करने से रोका। लेकिन 1920 और 1930 के दशक में अधिक से अधिक कदम उठाए गए:

1) 1923 में पेरिस में द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण सम्मेलन;

---

[7] लियोपोल्ड, एल्ओ, ''द कंज़र्वेशन एथिक, जर्नल ऑफ़ फॉरेस्ट्री, संस्करण 31, प्रति 6, अक्तूबर 1933, पृष्ठ संख्या 634–463।

2) 1923 में ब्रसेल्स में प्रकृति के संरक्षण के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय की स्थापना;

3) 1933 में पेरिस में एक अभूतपूर्व अंतर्राष्ट्रीय पक्षी संरक्षण सम्मेलन;

4) 1933 में लंदन में अफ्रीकी जीवों और वनस्पतियों के संरक्षण के लिए सम्मेलन;

5) 1936 में उत्तरी अमेरिकी वन्यजीव सम्मेलन; एवं

6) 1940 में ''पैन–अमरीकन यूनियन'' की स्थापना जो पश्चिमी गोलार्ध में वृहद रूप से संरक्षण के मुद्दों के लिए समर्पित थी।

इन्होंने विस्तारित अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों के लिए मंच तैयार किया जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उभरे। यह इसी समय हुआ जब पारिस्थितिकी और विकासवादी जीव विज्ञान में नए विकास में सरंक्षण के मुद्दों को सूचित करना शुरू किया और संरक्षणवादियों को उनकी वैज्ञानिक मान्यताओं के पुनर्परीक्षण के लिए बाध्य किया। पारिस्थितिकी (पारिस्थितिकी (ecology) शब्द का प्रयोग पहली बार जर्मन प्राणीविज्ञानी अनर्स्ट हैकेल द्वारा किया गया था) ने जैविक समुदायों, स्थलाकृतियों और अंतःक्रियाओं पर नए दृष्टिकोण प्रदान किए। यह लियोपोल्ड जैसे संरक्षणवादी थे जिन्होंने इन विकासों को एक साथ लाने की कोशिश की। वह उपयोगितावादी दृष्टिकोण के आलोचक थे और वानिकी की बारीकियों से हटकर वन्य जीवों के साथ संबंध एवं ''भूमि समग्र रूप में'' पर आधारित एक संरक्षण नैतिकता की एक अधिक सामान्य चिंता की ओर चले गए जिसमें ''मनुष्य जिस भूमि पर निवास करते हैं जीवन की स्वस्थ गुणवत्ता केवल

तभी बनाए रख सकते हैं यदि उनकी आर्थिक व्यवस्था आधारभूत प्राकृतिक व्यवस्था के साथ कार्य कर सके और उसके विरुद्ध नहीं।''[8]

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संरक्षण को न केवल नए वैज्ञानिक तरीकों से बल्कि उत्तर–औपनिवेशिक दुनिया में नए राजनीतिक समीकरणों के साथ संलग्न होना पड़ा। इस अवधि में मानव जनसंख्या वृद्धि, भूमि का क्षरण, वायु एवं जल प्रदूषण और समुद्री संसाधनों के अत्यधिक दोहन वैश्विक स्तर के संरक्षण के मुद्दों के रूप में उभरे। युद्ध ने आधुनिक संरक्षण के परस्पर संबंधित वैश्विक पहलुओं को प्रदर्शित किया। विकसित राष्ट्र अब नए स्वतंत्र राष्ट्रों के विकास की कार्यसूची के बारे में चिंतित थे और रसेल ट्रेन और जूलियन हक्सले जैसे बुद्धिजीवियों और कई अन्य संरक्षणवादियों ने ''विकासशील दुनिया'' को देखा और परेशान करने वाली प्रवृत्तियों की पहचान की। वि–उपनिवेशीकरण (Decolonization) और आर्थिक विकास ने विशिष्ट वनस्पतियों एवं जीवों के प्रति गंभीर खतरा पैदा किया और फेयरफील्ड ओसबोर्न (अवर प्लंडर्ड प्लैनेट; 1948) और विलियम वोग्ट (द रोड टू सर्वाइवल, 1948) जैसे विद्वानों ने तर्क दिया कि प्रकृति की संपदा आवश्यक रूप से किसी एक देश की संपति नहीं अपितु ''सारी दुनिया की है''। इस पर विचार करते हुए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सरकारों और संगठनों ने 1948 में मिलकर ''संपूर्ण विश्व जैविक पर्यावरण'' को संरक्षित करने के उद्देश्य से प्रकृति के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ

[8] हफमैन, थॉमस आर., 'एल्डो लियोपोल्डः हिस लाइफ एण्ड वर्क बाइ कर्ट मेन', द विस्कोसिन मैगज़ीन ऑफ़ हिस्ट्री, संस्करण 71, संख्या 4, (ग्रीष्म, 1988), पृष्ठ संख्या 301–304।

(lnternational Union for Conservation of Nature-IUCN) का गठन किया।

नव स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ अब अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण कार्यक्रमों में शामिल हुआ। जैसे–जैसे संसाधन प्रबंधन व्यवसाय अधिक विशिष्ट होते गए, संरक्षण समस्याओं के तकनीकी समाधान अपनाने की प्रवृत्ति आने लगी। इस परिवर्तनों ने संरक्षणवादी मुद्दों को विषयों और संस्थानों में विभाजित किया और एकीकृत पद्धतियों को विकृत बनाया जो युद्ध से पहले उभरी थीं। इसी बीच पृथ्वी विज्ञान ने स्थलीय, जलीय, समुद्री और वायुमंडलीय प्रणालियों के भीतर और उनके अंतर्संबंधों की अधिक वैज्ञानिक समझ प्रदान की। IUCN और 1961 में बनाए गए ''वर्ल्ड वाइल्डलाइफ़ फ़ंड'' (बाद में ''वर्ल्डवाइड फ़ंड'') ने राष्ट्रवादी नेताओं को संरक्षणवादी नीतियाँ अपनाने के लिए मनाने का प्रयास किया। उन्होंने राष्ट्रीय उद्यानों या राज्य संरक्षित ''जंगली'' प्रकृति के क्षेत्रों के निर्माण को बढ़ावा दिया जो कानूनो रूप से मानव उपयोग से कटे हुए थे। युवा राष्ट्रों को विकास के बजाय संरक्षण के बारे में सोचने के लिए राज़ी करना आसान नहीं था।

1950 और 1960 के दशक में आनुवंशिकी और विकासवादी जीव विज्ञान और नई संचार प्रौद्योगिकियों के परिवर्तन ने कार्यसूची में परिवतन किया। कृषि कीटनाशकों, औद्योगिक रसायनों और परमाणु ऊर्जा को अपनाने से मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी तंत्र के बारे में नई चिंताएं पैदा हुईं। रेचेल कारसन की 'साइलेंट स्प्रिंग' (1962) के प्रकाशन, जिसने डी.डी.टी. (डाइक्लोरो–डिपेनिल–ट्राइक्लोरोइथोन) आर अन्य कीटनाशकों के प्रभावों की

जाँच की, ने संयुक्त राज्य अमरीका में पर्यावरण आंदोलन को गति दी। 1970 के दशक में उत्तर (विकसित दुनिया) और दक्षिण (विकासशील दुनिया) में पर्यावरण आंदोलनों ने पर्यावरणीय सक्रियता और पर्यावरण के इतिहास को उत्प्रेरित किया जिसने संरक्षण के विचार को प्रभावित किया। 1960 के दशक में पर्यावरण के मुद्दों के बारे में बढ़ती जनसंख्या जागरूकता ने एक अवसर प्रदान किया और सभी देशों को एक साथ आने और पर्यावरणीय सुरक्षा उपायों के साथ आर्थिक विकास की वैश्विक आकांक्षाओं के सामंजस्य में सक्षम नीतियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया। विशेष रूप से एक घटना ने जल्दी ही इस आशा को अंगीकृत किया। 1968 में प्रस्तावित और जून 1972 के लिए नियोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCHE) दुनियाभर के पर्यावरणविदों के लिए आशा का प्रतीक बन गया।[9] जबकि 1950 और 1960 के दशक में वैश्विक विकास से संबंधित गैर सरकारी पर्यावरण संगठनों के विकासशील देशों के नेताओं को पर्यावरण संरक्षण अपनाने के लिए मनाने में संघर्ष किया। स्टॉक होम के बाद के वर्षों में कई गैर–सरकारी संगठनों ने अपने आंदोलन विदेशी आर्थिक मदद एवं विकास सहायता पर केंद्रित किए। सत्ता के प्रमुख गलियारों में विकास के विचारा और नीति के पुनर्निर्माण की उम्मीद में कार्यकर्त्ताओं ने निम्न को आकार देने में तेजी से सक्रिय भूमिका निभाने के लिए अवसरों पर कब्ज़ा कर लिया:

---

[9] मेसकुरा, स्टीफ़ेन जे., ''ऑफ़ लिमिट्स एण्ड ग्रोथः द राइज़ ऑफ़ ग्लोबल सस्टेनेबल डेवलपमेंट इन द टेवेन्टिएथ सेंचुरी,'' 2015, पृष्ठ संख्या 90।

1) अमरीकी विदेश सहायता नीति,

2) विश्व बैंक की ऋण प्रदान करने की गतिविधियों, और

3) संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम।

इस प्रक्रिया में कई प्रश्न उभरेः

1) पर्यावरण संबंधी विचारों का विकासात्मक आकांक्षाओं के साथ सामंजस्य कैसे हो सकता था और कैसे होना चाहिए?

2) पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के लिए प्रमुख विकास संस्थाओं को कैसे जवाबदेह बनाया जा सकता है? और गैर–सरकारी कर्त्ताओं को पर्यावरण संरक्षण को अधिक गंभीरता से लेने के लिए राज्यों पर दबाव डालने के लिए क्या कर सकते हैं?

इन सवालों के जवाब देने के प्रयासों ने कई बहसों को जन्म दिया, जिनमें पर्यावरणवाद और विकास नीति की एक मिश्रित समझ उभरी। 1970 के दशक के मध्य तक इस बहस ने आखिरकार एक दस्तावेज तैयार किया जिसमें पारिस्थितिक तंत्र के प्रबंधन के लिए बुनियादी सिद्धांतों को रेखांकित किया गया। इसके अनुसार आर्थिक विकास जारी रहना चाहिए, बशर्ते कि यह किसी पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर आनुवंशिक विविधता के संरक्षण में शामिल हो और पुनर्जनत संभव हो। आखिरकार 28 अक्टूबर, 1982 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा ''वर्ल्ड चार्टर फ़ॉर नेचर'' (प्रकृति के लिए घोषणा पत्र) को अपनाया गया। इसने ''संरक्षण के पाँच सिद्धांतों की घोषणा की जिसके द्वारा प्रकृति को

प्रभावित करने वाले सभी मानव आचरणों को निर्देशित और उसकी जाँच की जानी होगी'':

1) प्रकृति का सम्मान किया जाएगा और उसकी आवश्यक प्रक्रियाओं को बाधित नहीं किया जाएगा।

2) पृथ्वी पर सामान्य आनुवंशिक वृद्धि एवं विकास से समझौता नहीं किया जाएगा; जंगली और पालतू सभी जीवों की जनसंख्या का स्तर कम से कम उनके अस्तित्व के लिए पर्याप्त होना ही चाहिए और इसके लिए आवश्यक आवासों की रक्षा की जानी चाहिए।

3) पृथ्वी के सभी क्षेत्र, भूमि और समुद्र दानों, संरक्षण के इन सिद्धांतों के अधीन होंगे। अद्वितीय क्षेत्रों, विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों के प्रतिनिधि नमूनों और दुर्लभ या लुप्त प्राय प्रजातियों के आवासों को विशेष सुरक्षा दी जाएगी।

4) पारिस्थितिकी तंत्र और जीव, साथ ही भूमि, समुद्र और वायुमंडलीय संसाधन, जिनका उपयोग मनुष्य द्वारा किया जाता है, उनका प्रबंधन सर्वोत्तम संधारणीय उत्पादकता प्राप्त करने और उसे बनाए रखने के लिए किया जाएगा लेकिन इस तरह से नहीं कि उन अन्य पारिस्थितिक तंत्रों या प्रजातियों की अखंडता को खतरा हो जिनके साथ वे सहअस्तित्व में हों।

5) युद्ध या अन्य शत्रुतापूर्ण हानिकारक गतिविधियों से होने वाले क्षरण से प्रकृति की सुरक्षा की जाएगी।

इस प्रकार विश्व संरक्षण रणनीति ने ''संधारणीय विकास'' के लिए सभी विकास योजनाओं को निर्देशित करने के लिए तीन सिद्धांतों को रेखांकित कियाः

1) आवश्यक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं और जीवन समर्थन प्रणालियों को बनाए रखना;

2) विश्व के पारिस्थितिक तंत्रों में आनुवंशिक विविधता का संरक्षण करना; एवं

3) पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों का संधारणीय उपयोग सुनिश्चित करना।

जॉर्जीना मेस संरक्षण की रणनीतियों विभिन्न चरणों का निर्धारण करती हैं और सुझाव देती हैं कि 1960 के दशक तक ''एक प्रकृति स्वयं के लिए'' ढांचे के अंतर्गत संरक्षण की सफलता को अच्छी तरह से स्थापित मानदंडों के आधार पर मापा जाता था, उदाहरण के लिए संकटग्रस्त प्रजातियों की IUCN की लाल सूची (Red List) में शामिल प्रजातियों की संख्या में परिवर्तन या संरक्षित क्षेत्रों के विस्तार पर। परंतु 1970 और 1980 के दशकों में ''लोगों के बावजूद प्रकृति'' में ये उपाय भिन्न थे जिसमें खतरे के प्रकार और प्रजाति और क्षेत्रों की सूचना देने के लिए किए गए प्रयासों पर जोर दिया गया था जो अभी खतरे में नहीं थे परंतु यदि दबाव कम नहीं हुआ तो जल्दी ही खतरे में आ जाएंगे।''

1980 के दशक में संरक्षण की इस रणनीति में बदलाव का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि इसने यह भी स्वीकार किया कि संरक्षण को गरीबी को कम करने, सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार और वैश्विक असमानता को दूर करने की आवश्यकता है (मार्टिनेज़ एलियर और रामचंद्र गुहा ने इसे 'गरीबों का

पर्यावरणवाद' कहा है)। 1980 के दशक के मध्य में संरक्षण की कार्यसूची में अन्य महत्वपूर्ण जुड़ाव जैव–विविधता की अत्यधिक महत्व की स्वीकार्यता थी। 1980 के दशक में संधारणीय विकास और जैव विविधता संरक्षण ये दोनों ही शब्द संरक्षण नीति के अभिन्न अंग बन गए। फिर भी इन कई लक्ष्यों में सामंजस्य लाना एक कठिन कार्य था और 1980 और 1990 के दशकों में विभिन्न सरकारा और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा विभिन्न दिशाओं में खींचा–तानी हुई।

वृहद समयावधि	संरक्षण का ढाँचा	मुख्य विचार	विज्ञान का आधार
1960 1970	स्वयं के लिए प्रकृति	प्रजातियां, जंगल, संरक्षित क्षेत्र	प्रजातियां, आवास और वन्य जीव पारिस्थितिकी
1980 1990	लोगों के बावजूद प्रकृति	विलुप्ति, खतरे में और संकटग्रस्त प्रजातियाँ, आवास का विनाश, प्रदूषण, अत्यधिक शोषण	जनसंख्या जैविकी, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन
2000 2005	प्रकृति लोगों के लिए	पारिस्थितिकी तंत्र, पारिस्थितिकी तंत्र दृष्टिकोण, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं, आर्थिक मूल्य	पारिस्थितिक तंत्र के कार्य, पर्यावरणीय अर्थशास्त्र
2010	लोग और प्रकृति	पर्यावरणीय परिवर्तन, अनुकूलता,	अंतविर्सयक सामाजिक और पारिस्थितिकीय

		सामाजिक पारिस्थितिकीय तंत्र	विज्ञान

प्रकृति और संरक्षण के बदलते विचारः पिछले 50 वर्षों में संरक्षण के विचारों में कई परिवर्तन आए हैं जिसके परिणामस्वरूप, उदाहरण के लिए, प्रजातियों से पारिस्थितिकी तंत्र पर बल की ओर परिवर्तन हुआ है। किसी भी ढाँचे का महत्व नए ढाँचों के उभरने के कारण कम नहीं हुआ है जिनके परिणामस्वरूप आज कई ढाँचे प्रचलित हैं।

'हूज़ कंज़र्वेशन?' म जॉर्जीना मेस संरक्षण नीति के विभिन्न चरणों को सूचीबद्ध करती हैं और सुझाव देती हैं कि पारिस्थितिकी तंत्र आधारित ढाँचों ''लोगों के लिए प्रकृति'' और ''लोग और प्रकृति'' को एक प्रतिमान विस्थापना (paradign shift) की आवश्यकता है क्योंकि अब आवश्यक मानदंड लोगों के लिए आवश्यक और प्राप्त होने वाले लाभों को स्पष्ट रूप से पहचानते हुए प्रकृति को मानव की भलाई से जोड़ते हैं। मनुष्य बनाम प्रकृति के युग्मक (binary) की पड़ताल की गई है और प्रकृति में मानव ने महत्व प्राप्त कर लिया है। इसके लिए आवश्यक मानदंड प्रजातियों और संरक्षित क्षेत्रों से बहुल अलग हैं। अब संरक्षण की परिभाषा बदल गई है और ''जर्नल ऑफ़ जियोग्राफ़ी एंड नैचुरल डिसास्टर्स'' के अनुसारः

'पर्यावरण संरक्षण प्राकृतिक पर्यावरणों और उनमें निवास करने वाले पारिस्थितिकीय समुदायों की सुरक्षा, संरक्षण, प्रबंधन या पुनर्स्थापन है। संरक्षण

में वर्तमान जन लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों के मानवीय उपयोग का प्रबंधन और संधारणीय सामाजिक और आर्थिक उपयोग शामिल हैं।''

7.4 औपनिवेशिक एवं उत्तर–औपनिवेशिक संदर्भों में संरक्षणः भारत

जैसा कि स्वेरकर सोरलिन ने उल्लेख किया है, संरक्षण पर्यावरण इतिहास की आंदोलनकारी शाखा है ''द कांटेपोरेनिटी ऑफ़ एनवायरनमेंटल हिस्ट्री'' (जर्नल ऑफ़ कंटेपोरेरी हिस्ट्री, 2011, संख्या 3, पृष्ठ संख्या 610–630)। इस संदर्भ में संरक्षण शब्द के आधुनिक अर्थ रूप में 1970 के दशक के पर्यावरण आंदोलनों और बाद के दशकों में पर्यावरण इतिहास लेखन से उभरा। माधव माडगिल और रामचंद्र गुहा जैसे भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे गए प्रारंभिक पर्यावरण के इतिहास में शाही कार्यावलियों (agendas) द्वारा लाए गए बड़े परिवर्तन पर जोर दिया और औपनिवेशिक नीति को औपनिवेशिक भारत के पर्यावरण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण और नकारात्मक क्षण माना। प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर वनों और लकड़ी के वाणिज्यि और शोषणकारी उपयोग के लिए औपनिवेशिक राज्य की आलोचना की गई। महेश रंगराजन और रामचंद्र गुहा (1989) ने तर्क दिया है कि अंग्रेजों ने पेड़ों की निम्न कारणों से कटाई कीः

1) मार्गों के निर्माण के लिए,

2) जहाज़ निर्माण के लिए, और

3) रेल के स्हतीर (sleepers) बनाने के लिए।

इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश भारत के विभिन्न हिस्सों में काफ़ी वनों की कटाई हुई। वनों और वानिकी पर ध्यान भी ''चिपको'' और अन्य पर्यावरणीय आंदोलनों से जुड़ा हुआ था लेकिन धीरे–धीरे दक्षिण एशियाई बायोम (biomes) ने पर्यावरणीय प्रक्षेप पक्षों के जटिल समन्वय को प्रदर्शित किया। 'हरित साम्राज्यवाद' (रिचर्ड ग्रोव और विनीता दामोदरन द्वारा परिभाषित) ने उपनिवेशवाद में पैमाने में तीव्रता लाई और परिवर्तन हुए और वैज्ञानिक संरक्षण की नई कार्यशैलियाँ आईं। रंगराजन (2001) ने भी यह तर्क दिया कि जहाँ वनवासी केवल भोजन और जीवित रहने के लिए जानवरों का शिकार करते थे वहीं औपनिवेशिक अधिकारियों के लिए शिकार एक फुरसत की कीड़ा थी जिसमें बाघ जैसे कुछ जानवरों को नाशक जीव माना जाता था। विजय रामदास मंडल (2015) कहते हैं कि शिकार और संरक्षण भारत में 19वीं और 20वीं शताब्दी में ब्रिटिश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के आवश्यक भाग के रूप में साथ–साथ चले। यह तत्कालीन नियंत्रक लॉर्ड नेपियर थे जिनकी रुचि के कारण नीलगिरी शिकार संघ का गठन हुआ और बाद में नीलगिरी शिकार जानवर और मत्स्य संरक्षण (Nilgiri Game and Fish Preservation) अधिनियम II पारित किया गया। इस अधिनियम ने निषिद्ध मौसम (closed season) की स्थापना, कुछ विशिष्ट प्रकार के शिकार जानवरों और पक्षियों को मारने के लिए नए नियम निर्धारित किए। इसके अतिरिक्त इसने शिकार प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दंड निर्धारित किये। इसी वर्ष हाथी संरक्षण अधिनियम का पारित करना औपनिवेशिक सरकार द्वारा संरक्षण के क्षेत्र में बनाए अधिनियमों की एक श्रृंखला में प्रथम कदम था। इसके बाद 1887 में जंगली पक्षी संरक्षण अधिनियम और जंगली पक्षी और पशु संरक्षण अधिनियम,

1912 आया। विशेष रूप से 1912 का अधिनियम शिकार के निषिद्ध और खुले मौसमों को लागू करने में बेहद प्रभावो था और इसके अंतर्गत शिकार के लिए एक अनुज्ञापत्र (license) भी अनिवार्य था जो इसके बाद ब्रिटिश भारत में क्रियाशील हो गया। एरिक स्ट्राहॉर्न ने इस प्रावधान को संरक्षण के नए युग के रूप में वर्णित किया है क्योंकि इसने विशेष रूप से बाघ प्रगति को खत्म होने से बचाओं के लिए रात में बाघों को मारने पर रोक लगाई, लुप्तप्राय जंगली जानवरों के शिकार के मौसम निरीक्षण किया, 'करिश्माई' पक्षियों और जानवरों का संरक्षण करने के साथ शिकार को ले जाने पर प्रतिबंध लगाया। इसके अलावा 1932 में बंगाल गैंडा संरक्षण अधिनियम (Bengal Rhinoceros Preservation Act) दुर्लभ एक सींग वाले गैंडे की प्रजाति की सुरक्षा के लिए पारित किया गया। जिम कॉर्बेट, जो संयुक्त प्रांत में आदमखोर बाघों के शिकार के लिए जाने जाते थे, प्रसिद्ध संरक्षणवादी बन गए। संयुक्त प्रान्त के नियंत्रक मैल्कम हेली की सहायता से 1933 और 1935 के बीच कॉर्बेट कुमाऊँ की पहाड़ियों में (''हेली राष्ट्रीय उद्यान'' जिसे अब ''कार्बेट उद्यान'' के नाम से जाना जाता है) एक वन्यजीव अभयारण्य बनाने में सफल रहे। बाद में, कॉर्बेट ने अपने प्रयासों को पूरी तरह से वन्य जीव संरक्षण के लिए समर्पित कर दिया और बंदूक के बजाय कैमरों के साथ जानवरों की शूटिंग (तस्वीर खींचने) की वकालत की। इस समय के आसपास बंजारा घाटी रिज़र्व और काजीरंगा अभयारण्य जैसे कई वन्य जीव अभयारण्य भी स्थापित किए गए।

उत्तर–औपनिवेशिक सरकार ने मोटे तौर पर संरक्षित क्षेत्रों की नोति को कायम रखा और 1970 के दशक में दुनिया के अन्य हिस्सों की तरह भारत में

पर्यावरण आंदोलनों और चेतना का उदय हुआ। इंदिरा गांधी ने गहरी दिलचस्पी ली और 1972 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम (Wildlife Protection Act) द्वारा बाघ की खाल के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया गया और ''प्रोजेक्ट टाइगर'' की घोषणा की गई। 1920 के दशक के दौरान नए क्षेत्रों को संरक्षित घोषित किया गया परंतु घनी आबादी वाले देश में मानव निवास रहित क्षेत्रों को खोज पाना मुश्किल था। संरक्षणवादी मानसिकता, जो प्राचीन या पूर्वकालिक (pristine) आदर्श मानती थी, ने बहिष्करण और यहाँ तक कि संरक्षित क्षेत्रों से मनुष्यों को हटाने की वकालत करना जारी रखा। यह प्रथा औपनिवेशिक काल से चली आ रही थी। इसने किसान और जनजातीय आबादियों की जीविका को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया क्योंकि वन प्रदान करते थे:

1) जलाऊ लकड़ी,

2) चारा,

3) जड़ी–बूटी, और

4) अन्य वन उत्पाद।

इसने राजस्व और वन विभाग के पदाधिकारियों के प्रति बहुत शत्रुता उत्पन्न की जैसा कि ''चिपको आंदोलन'' के दौरान देखा गया था। 1980 के दशक में इन संरक्षित क्षेत्रों के प्रबंधन की समस्याएँ सामने आईं और एक सर्वेक्षण से पता चला कि 70 प्रतिशत संरक्षित क्षेत्रों का उपयोग जानवर चराने के लिए किया जाता था, मनुष्य भी उसके भीतर और आस–पास रहते थे। मानव बस्तियाँ

सुअर, हिरण और अन्य जानवरों की बढ़ती संख्या से प्रभावित हुए जो उनके खेतों पर धावा बोल देते थे। जंगली जानवरों जैसे बाघ के बढ़ने का मतलब था आस–पास रहने वाले समुदायों के पालतू पशुओं की हानि।

1988 में आदिवासी समूहों और वनवासियों के साथ काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं द्वारा व्यक्त की गई समस्याओं के जवाब में भारत सरकार द्वारा एक नई वन नीति का प्रारंभ किया गया। यह विश्व बैंक और खाद्य और कृषि संगठन (FAO) के समर्थन से पूरी दुनिया में सामुदायिक वानिकी के उद्भव से जुड़ा था। नई नीति ने आदिवासी लोगों के परंपरागत अधिकारों और हितों पर जोर दिया और प्राकृतिक संसाधनों और आजीविका की संधारणीयता को सक्षम बनाने के लिए इन्हें वनों के संरक्षण, पुनजनन और विकास के करीब से जोड़ने की योजना बनाई। इसे 1990 की आठवीं पंचवर्षीय योजना में लागू किया गया था। 1996 में लकड़ी पर प्रतिबंध और अनुसूचित जनजाति और अन्य वनवासी अधिनियम, 2006 इस पुनर्विचार का हिस्सा थे। 20वीं शताब्दी के अंत में वसंत सबरवाल, महेश रंगराजन और आशीष कोठारी (''पीपल, पार्क्स एंड वाइल्ड लाइफः टुवर्डस कोएगज़िस्टेंस, 2001)'' जैसे विद्वानों ने किलेबंदी जैसे संरक्षण से, जिसमें बहिस्करणवादी दृष्टिकोण (exclusionist perspective) से बिल्कुल अलग समुदाय–आधारित संरक्षण के प्रतिमान बदलाव के लिए तर्क दिया और अधिक संधारणीय संरक्षण रणनीतियों के लिए स्थानीय समुदायों के पारिस्थितिक तंत्र के ज्ञान का आह्वान करते हुए उन्हें हितग्राहियों के रूप में शामिल करने के लाभों की ओर इशारा किया। वसंत सबरवाल द्वारा किया गया एक दिलचस्प और महत्वपूर्ण तर्क यह था कि विहनता और प्रतिस्पर्धा पारिस्थितिक

तंत्र की व्यवहार्यता को परिभाषित करती है जबकि बहिष्करण परिवर्तनात्मकता को नष्ट कर देता है और जैव–विविधता को कम करता है। यह माधव गाडगिल और पी. आर. शेषगिरी राव ने ''नर्चरिंग बायोडाइवर्सिटी (1998)'' में भी बताया है। इसलिए, जैव–विविधता मानव गतिविधि से प्रायः मजबूत होती है और आग लगाने और चराई के विवेकपूर्ण उपयोग की अनुसूची दी जानी चाहिए।

1990 का दशक दुनिया और भारत में नव उदारवादी नीतियों का दौर था जिसने प्रकृति के संरक्षण को गहराई से प्रभावित किया। ये नीतियाँ निम्नलिखित को बढ़ावा देती हैं:

1) प्राकृतिक संसाधनों के विनिमय और उपभोग के लिए पूंजीवादी बाज़ारों का निर्माण,

2) इन बाज़ारों के भीतर संसाधन नियंत्रण का निजीकरण,

3) संसाधनों का वस्तुकरण ताकि उनका बाज़ारों के भीतर व्यापार किया जा सके,

4) बाज़ार के लेनदेन से सीधा सरकारी हस्तक्षेप समाप्त करना, और

5) स्थानीय अधिकारियों और गैर–सरकारी कर्ताओं जैसे गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) के लिए संसाधन प्रशासन का विकेंद्रीकरण।[10]

फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य के कर्ताओं को समाप्त करने से ऐसा जरूरी नहीं कि समुदायों को लाभ हो, बल्कि इसका लाभ अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों और निगमों को मिलता है। इसलिए अंत में संरक्षण का लाभ गरीबों के बजाय उच्च वर्गों द्वारा प्राप्त किए जाते हैं।[11] सुनीता नारायण के उद्धरण के साथ समाप्त करना सार्थक होगाः

''हमने पर्यावरण को एक विकास चुनौती नहीं बनाया है। क्योंकि हमने अभी तक यह नहीं सीखा है कि इसे संधारणीय रूप से कैसे उपयोग किया जाए। इसलिए पर्यावरण संरक्षण विकास के साथ एक स्थायी संघर्ष बन जाता है। प्रकृति और नौकरियों के बीच संघर्ष। इसके बजाय हमें नौकरियों और समृद्धि के सबसे बड़े उद्यम के लिए पर्यावरण का उपयोग करने के लिए नीतियों और कार्यशैलियों की आवश्यकता है। वनों, भूमि, जल और मत्स्य–पालन के उपयोग से हरित भविष्य का निर्माण करना होगा। लेकिन हम नहीं जानते कैसे। हम नहीं जानते कि कैसे हम सबसे बुनियादी सबक सीखने से इंकार करते हैं – लोगों और समुदायों पर वास्तव में भरोसा करना। अभी तक हमने बस इतना किया है कि रूकावट पैदा करने और उलझाने के लिए नौकरशाही के हथकंडों

---

[10] रॉबर्ट फ्लेचर, 'नियोलिबरल एनवायरनमेंटालिटीः टुअर्ड्स ए पोस्ट–स्ट्रकचरलिस्ट पोलिटिकल इकोलॉजी, 2010, संस्करण 8, संख्या 3 (2010), पृष्ठ संख्या 171–181।

[11] निकोलस लेन और टी. बी. सुबभा, ''नेचर एनवायरनमेंट एण्ड सोसायटो वनज़र्वेशन गवर्नेंस एंड ट्रांसफोरमेशन इन इंडिया'', 2014।

का प्रयोग किया है। हमें परिवर्तन लाने होंगे – प्रभावी और गंभीर। पर्यावरण के प्रबंधन के लिए शक्तियों को हस्तांतरित करने के लिए प्रभावी और गंभीर परिवर्तन करने होंगे।[12]

बोध प्रश्न 1

1) ब्रिटिश काल के दौरान पारित किए गए विभिन्न पर्यावरण अधिनियमों पर प्रकाश डालें। क्या इन्होंने पारिस्थितिकी के संरक्षण एवं पुनर्स्थापन में सहायता प्रदान की और सुगम बनाया या साथ ही साथ इसे नुकसान पहुंचाया?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित कथनों में सही या गलत बताईए –

[12] https://www.india-seminar.com/2005/545/545%20sunita%20narain1.html देखा 12 मार्च, 2021।

क) पूर्वी अफ़्रीका के मासाई पशुपालन करते हैं जो उनकी आधुनिक निवास भूमि में उनका विशाल जानवरों के साथ सह–अस्तित्व संभव बनाता है। ( )

ख) ''संरक्षण'' शब्द पहली बार ऑस्ट्रेलिया में 14वीं शताब्दी में थेम्स नदी जैसी घाटियों के नियंत्रण के संदर्भ में अपनाया गया था। ( )

ग) येलोस्टोन राष्ट्रीय उद्यान के शुरुआती वर्षों में अमेरिकी मूल निवासियों को पौधों और जड़ी–बूटियों को इकट्ठा करने की अनुमति दी गई थी लेकिन बाद में उन्हें इससे वंचित कर दिया गया। ( )

घ) ''पारिस्थितिकी'' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जर्मन प्राणी विज्ञानी अन्सर्ट हैकेल ने किया था। ( )

ड़) प्रकृति संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ (IUCN) की स्थापना ''संपूर्ण विश्व के जैविक पर्यावरण'' के संरक्षण के उद्देश्य से की गई थी। ( )

च) 1980 के दशक में संधारणीय विकास और जैव–विविधता संरक्षण, दोना ही, दुनिया भर में संरक्षण नीति का अभिन्न अंग बन गए। ( )

छ) 1933 और 1935 के बीच संयुक्त प्रांत के नियंत्रक मैल्कम हैली की मदद से सुंदरलाल बहुगुणा ने कुमाऊँ की पहाड़ियों में एक वन्यजीव अभयारण्य बनाया था। ( )

ज) इंदिरा गांधी ने पर्यावरण चेतना और आंदोलनों में गहरी रुचि ली। 1972 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम पारित किया गया और प्रोजेक्ट टाइगर की घोषणा की गई। ( )

7.5 सारांश

इस इकाई में अपने इस ग्रह पर हर चीज़ की संधारणीयता के लिए पारिस्थितिकी संरक्षण के महत्व और सुरक्षा के बारे में सीखा, चाहे वह मानव हों या वनस्पति और प्राणी। आपको ऐतिहासिक समय में पर्यावरण और इसके संरक्षण की समझ में बदलाव के बारे में बताया गया। भारत और पश्चिम में संरक्षण के इतिहास की रूपरेखा भी प्रदर्शित की गई। हमारे औपनिवेशिक मालिकों ने हमारे पारिस्थितिक तंत्र को कैसे प्रभावित किया इसके बारे में भी आपको विस्तार से बताया गया। इस इकाई में यह भी वर्णन किया गया है कि उत्तर–औपनिवेशिक सरकारों के वर्तमान समय तक प्रकृति के संरक्षण और पुनर्स्थापन के मुद्दे का किस प्रकार से सामना किया।

7.6 शब्दावली

एन्थ्रोपोजेनिक : मानवों के द्वारा किया गया या मानवजनित।

जैव विविधता : एक पर्यावरण में पौधों और जानवरों की प्रजातियों के बीच विविधता।

संधारणीय विकास : मानवीय विकास लक्ष्यों को पूरा करने के लिए संगठन सिद्धांत जो साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों

और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं, जिन पर अर्थव्यवस्था और समाज निर्भर होते हैं, उन्हें प्रदान करने के लिए प्राकृतिक प्रणालियों की क्षमता को बनाए रखता है।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) खण्ड 7.4 देखें।

2) क) सही, ख) गलत, ग) सही, घ) सही, ड़) सही, च) सही, छ) गलत, और ज) सही।

7.8 संदर्भ ग्रंथ

Allier Martinez Martinez-Alier (2002), *The Environmentalism of the Poor: A Study of Ecological Conflicts and Valuation*. Cheltenham: Edward Elgar.

Arnold, David and Ramachandra Guha (1995) (Eds.), *Nature, Culture, Imperialism: Essays on the Environmental History of South Asia*. New Delhi: Oxford University Press.

Carson, Rachel (1962),*Silent Spring.* Houghton Miffin.

Damodaran, Vinita (2012), 'Colonialism, Imperialism and Environmental History'. In*Encyclopaedia of Life Support Systems.* Oxford: UNESCO Publishing-Eolss Publishers.

Diamond, Jared(2005),*Collapse: How Societies Chose to Fail or Succeed.* Viking Press.

Fletcher, Robert(2010),'Neoliberal Environmentality: Towards a Poststructuralist Political Ecology of the Conservation Debate'. *Conservation and Society, 2010, Vol. 8, No.3*,pp. 171-181.

Gadgil, Madhav(2001), *Ecological Journeys: The Science and Politics of Conservation in India.*New Delhi: Permanent Black.

Gadgil, Madhav and P.R. Sheshagiri Rao(1998), *Nurturing Bio Diversity.* Ahmedabad: Centre for Environment Education.

Gadgil, Madhav and Ramachandra Guha (1993), *My Fissured Land.* Berkeley University of California Press.

Glacken, Clarence J., *Traces of the Rhodian Shore.*University of California Press.

Guha, Ramachandra(1989),*The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance in the Himalaya.* New Delhi: Oxford University Press.

Kirchhoff, Thomas and Vera Vicenzotti(2014), 'A Historical and Systematic Survey of European Perceptions of Wilderness'. *Environmental Values, Vol. 23, No. 4,* pp. 443-46.

Kupper, Patrick; translated by Giselle Weiss(2014), *Creating Wilderness: A Transnational History of the Swiss National Park.* New York: Berghahn.

Laine, Nicolas and T.B. Subba(2014), *Nature, Environment and Society Conservation Governance and Transformation in India*. Orient Blackswan.

Mace, Georgina (2014), 'Whose Conservation?'. *Science AAAS,Vol. 345, No. 6204,* pp. 1558-1560.

Macekura, Stephen J., *Of Limits and Growth: The Rise of Global Sustainable Development in the Twentieth Century.* Cambridge University Press.

Mandala, Vijay Ramdas(2015), 'The Raj and the Paradoxes of Wildlife Conservation: British Attitudes and Expediencies'. *The Historical Journal, Vol. 58, No. 01,* pp. 75-110.

Marsh, George Perkins (1864), *Man and Nature: Or Physical Geography as Modified by Human Action.*

Meine, Curt(1988), 'Aldo Leopold: His Life and Work'. *The Wisconsin Magazine of History, Vol. 71, No. 4,* pp. 301-304.

Nash, Roderick Frazier(2004), 'Wilderness preservation is a gesture of planetary modesty by the most dangerous animal on Earth:

Celebrating Wilderness in 2004'. *The George Wright Forum, Vol. 21, No. 3,* pp. 6-8.

Nash, Roderick Frazier(1982), *Wilderness and the American Mind.* New Haven: Yale University Press.

Osborn, Fairfield (1948), *Our Plundered Planet.* Boston: Little Brown.

Pyne, Stephen J. (2019),*A Short History of Fire*. Weyerhaeuser: University of Washington Press.

Rangarajan, Mahesh (1996). 'Environmental Histories of South Asia: A Review Essay'.*Environment and History, No. 2, South Asia Special Issue (June 1996),* pp. 129-43.

Rangarajan, Mahesh (1996). *Fencing the Forest: Conservation and Ecological Change in India's Central Provinces, 1860-1914*.Oxford University Press.

Rangarajan, Mahesh (2001), *India's Wildlife History*. New Delhi: Permanent Black, in association with Ranthambore Foundation, New Delhi.

Saberwal, Vasant, Mahesh Rangarajan and Ashish Kothari (2001), *People, Parks and Wildlife: Towards Coexistence*. Orient Longman.

Sivaramakrishnan, K. (2015), 'Ethics of Nature in Indian Environmental History'. *Modern Asian Studies, Vol. 49, No. 4*,pp. 1261-1310.

Sorlin, Sverker(2011), 'The Contemporaneity of Environmental History. *Journal of Contemporary History, Vol. 46 No.3,* pp. 610-630.

Vogt,William(1948), *The Road to Survival*. New York: William Sloane Associates.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY